



THE TIMES OF INDIA

Date: 24-10-26

This Isn't The UN We Need

India's former envoy to UN, writing on its 81st birthday, argues member-states carry a lot of blame for its ineffectuality. And just saying UN should exist is not a reason to be ok with it

Syed Akbaruddin

As UN marks its 81st anniversary, reasons to write it off are not hard to find. Wars continue, powerful govts disregard it, and countries seeking a greater say wait decades for reform. What is less often asked is whether the people in whose name it was founded have given up on it too.

Gallup's survey, conducted in 2025 and released in Sept, points the other way. Across most countries surveyed, more people approve of UN's performance than disapprove. India is among them. It has more support than the conduct of powerful govts might suggest.

Across the 137 countries and territories surveyed, median approval of UN's performance was 50%, compared with median disapproval of 26%. Approval exceeded disapproval by at least 10 percentage points in 92. Anyone arguing that the world has written UN off has to account for these findings.

Pew Research Center's survey, conducted between Feb and May 2026, and published in Aug, records declines in favourable opinion in 10 countries since its previous surveys. In Russia, Gallup finds only 15% approving of UN's performance and 73% disapproving. Widespread support offers no guarantee that confidence will endure.

In India, Gallup puts approval at 36%, exceeding disapproval by at least 10 percentage points. Pew found that 40% of Indians viewed UN favourably, and 18% unfavourably. The two surveys ask different questions: Gallup asks about job performance; Pew asks about favourable or unfavourable impressions. Both, however, find more positive than negative opinion.

Neither survey finds a majority in favour. In Pew, about four in ten Indians offered no opinion, roughly as many as those who viewed UN favourably. We cannot count them as critics or assume that their support would be easy to win.

Some may know little about UN; others may find it remote or have mixed feelings. Indian attitudes may also reflect disagreements with parts of the UN system. Comments by UN bodies that India rejects as selective or intrusive may colour public perceptions. Such objections need not mean rejecting the organisation as a whole.

The comparison with Pakistan shows why approval figures alone can mislead. Pew's favourable ratings are quite close: 40% in India and 38% in Pakistan. Unfavourable opinion stands much further apart, at 18% and 48% respectively. Gallup also finds greater dissatisfaction in Pakistan. The larger difference is in how many people disapprove, rather than how many approve.

The regional findings deserve attention in Kartavya Bhawan too. Gallup records the strongest support in Southeast Asia and Africa south of Sahara. West Asia and North Africa are substantially more negative. These differences make it difficult to claim a common view across Global South. Govts may agree that UN needs reform without their publics sharing a view of its present worth. India's approach will need to account for these different expectations.

Even where ratings are similar, the complaints behind them may differ. Gallup finds low approval in both Israel and Palestinian populations surveyed in West Bank and East Jerusalem. The figures do not explain why. One person may object to a UN decision; another may object to the failure to enforce it. They may give the same answer, while wanting very different changes.

Disappointment with UN's performance does not necessarily mean rejecting its existence. Someone angered by UN's failure to stop a war may want it to have greater authority. Another may want it weakened or replaced. Neither survey tells us which response is more common.

India's pursuit of a greater role rests on the belief that UN still matters. It wants permanent membership of Security Council, and is also seeking an elected seat for the 2028-29 term. Challenging the distribution of power within UN is consistent with wanting it to work better.

Other countries will want to know what India's reform agenda would mean for them. India's case for reforming UN must reach beyond its claim to a permanent seat. Countries expected to live with Security Council decisions should help shape them. Those sending peacekeepers should have a say in what their troops are asked to do. Reform must change whose judgement counts and whose concerns get heard.

India's reform case should also be addressed to citizens at home. Someone unfamiliar with UN may find its role in a vaccination programme more revealing than another speech about multilateralism. Someone disappointed by Security Council's failure to prevent war deserves an honest account of what has stopped it, and what India proposes to change. Public support gives UN no exemption from explaining its failures.

Member states owe an explanation too. UN depends on them to meet their financial obligations and provide troops, and on Security Council members to agree on action. When govts withhold the means to carry out its work, they share responsibility for the failure. Those with the power to block decisions bear a particular responsibility. Blaming UN should not let them off the hook.

The polls make it harder to claim that the public has given up on UN. They leave India with reason to persist with reform, and a need to explain what that reform would accomplish. Believing that the organisation should exist is no reason to be satisfied with UN we have.



दैनिक भास्कर

Date: 24-10-26

नौकरियां तो हैं, पर स्किल्स पर भी हमें ध्यान देना होगा

संपादकीय

अपनी ऊर्जा समस्या के हल के लिए अमेरिका जैसा देश भारत के उद्योगपतियों से मिल रहा है। पिछले पांच वर्षों में भारत से यूरोप को हथियार आपूर्ति 16 गुना बढ़ी है। इसी काल में पूरे एशिया-प्रशांत क्षेत्र में भारत के उद्योगपतियों ने सबसे ज्यादा निजी जेट्स खरीदे हैं। लेकिन इन उत्साहवर्धक खबरों के बीच वैश्विक संस्थाओं की ही नहीं, सरकारी रिपोर्ट भी कहती है कि 18-22 आयु वर्ग के युवा पढ़ाई छोड़कर जीवनयापन के लिए कम आय वाले गिग वर्कर्स बन रहे हैं या असंगठित क्षेत्र में आजीविका कमाना बेहतर मान रहे हैं। इससे भी बड़ा संकट है कि लाखों युवा शिक्षा में पंजीकृत हैं, लेकिन आजीविका के लिए निम्न आय वाले पेशों में भी लगे हैं। इस मानसिकता को मेंटल ड्रॉप आउट कहा जाता है। यानी ड्रॉप आउट की वास्तविक संख्या काफी ज्यादा है। आईएलओ आईएचडीएस और सरकारी पीएलएफएस रिपोर्ट के अनुसार नीट (वह वर्ग जो न तो शिक्षा पा रहा है और न ही किसी किस्म के रोजगार या ट्रेनिंग में है) वर्ग का प्रतिशत देश में लगातार बढ़ रहा है। कुल बेरोजगारों की फौज में सेकंडरी या उससे ऊपर की शिक्षा वाले 83% युवा हैं। टेक क्षेत्र में नौकरियां तो हैं, लेकिन प्रशिक्षित युवा नहीं हैं। शिक्षा मंत्रालय का सालाना बजट में शेयर गत 12 वर्षों में 4.6% से घटकर 2.5% रह गया है, जबकि सड़कों पर व्यय 1.8% से तीन गुना बढ़कर 5.8% हो गया है।



दैनिक जागरण

Date: 24-10-26

डिजिटल बैंकिंग में भरोसे का संकट

डॉ. ब्रजेश कुमार तिवारी, (लेखक जेएनयू में प्रोफेसर हैं)

भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) के लगभग चार हजार ग्राहकों की निजी जानकारी जैसे कि नाम, मोबाइल नंबर, जन्मतिथि, ईमेल, आवासीय पता, ग्राहक पहचान संख्या और ऋण से जुड़े विवरण डार्क वेब पर सामने आने की

खबर ने देश की बैंकिंग व्यवस्था के सामने एक गंभीर सवाल खड़ा कर दिया है। जिस बैंक पर करोड़ों लोग अपनी जीवनभर की बचत के लिए भरोसा करते हैं, यदि उसके ग्राहकों की व्यक्तिगत जानकारी सुरक्षित नहीं रह पाती तो डिजिटल बैंकिंग पर लोगों का विश्वास कैसे बना रहेगा? यह घटना केवल तकनीकी सुरक्षा से जुड़ा मामला नहीं है। इसका सीधा संबंध ग्राहकों की गोपनीयता, वित्तीय सुरक्षा और बैंकों की जवाबदेही से है। व्यक्तिगत जानकारी का दुरुपयोग भविष्य में वित्तीय धोखाधड़ी का कारण बन सकता है। किसी साइबर अपराधी के पास ग्राहक का नाम, मोबाइल नंबर, जन्मतिथि और ऋण आवेदन का विवरण हो तो वह बैंक अधिकारी बनकर विश्वास हासिल करने का प्रयास कर सकता है। वह ग्राहक को ऋण स्वीकृति, केवाईसी अपडेट या खाते की सुरक्षा के नाम पर धोखा दे सकता है। इस प्रकार निजी जानकारी की चोरी आर्थिक नुकसान का रास्ता खोल सकती है।

आज बैंक केवल जमा और ऋण देने वाले संस्थान नहीं रह गए हैं। उनके पास ग्राहकों की आय, संपत्ति, व्यवसाय, पारिवारिक विवरण, लेनदेन और वित्तीय व्यवहार से जुड़ी व्यापक जानकारी रहती है। यह जानकारी बैंकिंग सेवाओं को सुविधाजनक बनाती है, लेकिन इसके गलत हाथों में पहुंचने की कीमत बहुत अधिक हो सकती है। दूसरे देशों का अनुभव हमारे लिए उपयोगी सबक प्रस्तुत करता है। अमेरिका में 2019 में कैपिटल वन बैंक से जुड़ी एक बड़ी डाटा चोरी सामने आई थी। इससे अमेरिका के लगभग 10 करोड़ और कनाडा के लगभग 60 लाख लोग प्रभावित हुए थे। इससे स्पष्ट होता है कि साइबर सुरक्षा में कमजोरी को केवल तकनीकी चूक मानकर अनदेखा नहीं किया जा सकता। बैंक प्रबंधन की जवाबदेही भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। यूरोपीय संघ ने व्यक्तिगत डाटा की सुरक्षा के गंभीर जोखिम वाले डाटा उल्लंघन की सूचना नियामक को सामान्यतः 72 घंटे के भीतर देने की व्यवस्था की है। तकनीकी सेवाएं किसी बाहरी कंपनी को सौंप देने से बैंक की जिम्मेदारी समाप्त नहीं होती। सिंगापुर ने भी फिशिंग धोखाधड़ी के कुछ निर्धारित मामलों में बैंकों और दूरसंचार कंपनियों की साझा जिम्मेदारी तय करने वाला ढांचा विकसित किया है। इसका उद्देश्य केवल अपराध होने के बाद कार्रवाई करना नहीं, बल्कि वित्तीय संस्थानों को धोखाधड़ी रोकने के लिए अधिक जिम्मेदार बनाना है। भारत ने डिजिटल व्यक्तिगत डाटा संरक्षण अधिनियम, 2023 और 2025 में अधिसूचित नियमों के माध्यम से महत्वपूर्ण कदम उठाया है। हालांकि डाटा उल्लंघन की सूचना देने सहित कई प्रमुख प्रविधानों का लागू होना अभी शेष है। अब आवश्यकता इसकी है कि नियामकीय रिपोर्टिंग के साथ प्रभावित ग्राहक को भी समय रहते उपयोगी जानकारी मिले।

सबसे पहला सुधार ग्राहकों को सूचना देने की व्यवस्था में होना चाहिए। प्रत्येक बैंक को संभावित डाटा उल्लंघन की पुष्टि होने पर प्रभावित ग्राहकों को व्यक्तिगत रूप से सूचित करना चाहिए। उन्हें बताया जाए कि इससे क्या खतरा हो सकता है और ग्राहक को किन सावधानियों की आवश्यकता है। स्वतंत्र साइबर सुरक्षा परीक्षण होना चाहिए। बैंक नियमित रूप से बाहरी विशेषज्ञों से अपने डिजिटल सिस्टम की जांच कराएं। संवेदनशील जानकारी को सुरक्षित तकनीक से संरक्षित किया जाए और कर्मचारियों एवं सेवा प्रदाताओं को केवल आवश्यक डाटा तक ही पहुंच मिले। ऋण आवेदन और डिजिटल केवाईसी से जुड़े रिकार्ड के उपयोग, संग्रहण और निस्तारण की स्पष्ट नीति होनी चाहिए। किसी बाहरी एजेंसी की सुरक्षा में कमजोरी पाए जाने पर उसकी जिम्मेदारी भी तय हो। रिजर्व बैंक को बैंकों के लिए एक साझा साइबर घटना रिपोर्टिंग और सीखने की व्यवस्था विकसित करनी चाहिए। इससे

एक बैंक पर हुए हमले के अनुभव से दूसरे बैंक भी अपनी सुरक्षा मजबूत कर सकेंगे। बड़े डाटा उल्लंघन के बाद स्वतंत्र जांच का सार्वजनिक सारांश उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जिसमें ग्राहकों की गोपनीयता बनाए रखते हुए घटना के कारण और सुधारात्मक कदम बताए जाएं। ग्राहकों को भी अनजान व्यक्ति को ओटीपी, यूपीआई पिन या इंटरनेट बैंकिंग पासवर्ड नहीं बताना चाहिए। संदिग्ध लेनदेन होने पर तुरंत बैंक को सूचित करें और साइबर अपराध हेल्पलाइन 1930 पर शिकायत दर्ज कराएं।

भारत ने डिजिटल भुगतान और वित्तीय समावेशन में उल्लेखनीय प्रगति की है। अब उसी गंभीरता से ग्राहकों की जानकारी और उनके अधिकारों की रक्षा करनी होगी। एसबीआई की घटना को किसी एक बैंक की प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाने के बजाय पूरे बैंकिंग क्षेत्र के लिए चेतावनी के रूप में देखना चाहिए। लोगों ने बैंकों को केवल अपना पैसा नहीं सौंपा, अपनी पहचान और निजी जीवन से जुड़ी संवेदनशील जानकारी भी सौंपी है। बैंकिंग व्यवस्था की सफलता का पैमाना केवल मुनाफा या डिजिटल लेनदेन की संख्या नहीं, बल्कि ग्राहकों का विश्वास और उनकी जानकारी की सुरक्षा भी होनी चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 24-10-26

प्रदूषण रोकने के लिए हो तालमेल

संपादकीय



दिल्ली में वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) एक ही दिन में 179 से बढ़कर 244 ('खराब') होते ही प्रशासन ने सराहनीय तत्परता दिखाते हुए ग्रेडेड रिस्पॉन्स एक्शन प्लान का पहला चरण (ग्रेप I) लागू कर दिया है। एक्यूआई स्तर से संबंधित चार चरणों वाली इस योजना के पहले चरण में कोयला और लकड़ी जलाने (रेस्तरां और खुले भोजनालयों में इस्तेमाल होने वाले तंदूर सहित) और कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर डीजल जेनरेटर के उपयोग पर प्रतिबंध लगाया गया है। यह कदम दिल्ली की शीतकालीन प्रदूषण नियंत्रण योजना से लगभग एक सप्ताह पहले उठाया गया है। इसके तहत, वैध प्रदूषण-नियंत्रण प्रमाणपत्र न होने पर वाहनों को पेट्रोल पंपों से

ईंधन देने पर रोक होगी, भारत-VI उत्सर्जन मानकों को पूरा न करने वाले बाहरी वाहनों के प्रवेश पर प्रतिबंध होगा, 50 फीसदी कर्मचारियों के लिए घर से काम को अनिवार्य करना होगा, निजी वाहनों के इस्तेमाल को हतोत्साहित करने के लिए पार्किंग शुल्क दोगुना कर दिया जाएगा, और निर्माण कार्यों पर भी पाबंदी लगाई जाएगी।

ये नियम फरवरी के अंत तक लागू रहेंगे। ये प्रारंभिक कदम, दुनियाभर में कुख्यात शहर के शीतकालीन प्रदूषण को नियंत्रित करने के सराहनीय प्रयास हैं। हालांकि, धान की पराली जलाने की शुरुआत, हवा की गति में अचानक गिरावट, दिल्ली सरकार की निगरानी क्षमता और दीवाली के दौरान भारी आतिशबाजी की संभावना को देखते हुए अभी यह बताना जल्दबाजी होगी कि ये कदम कितने कारगर रहेंगे। आतिशबाजी पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाना समझ से परे है।

दिल्ली के नागरिकों को आने वाली सर्दियों में स्वच्छ हवा मिले, यह सुनिश्चित करने में ये केवल कुछ चुनौतियां हैं। कारगर होने के लिए प्रवर्तन का दायरा कहीं अधिक व्यापक होना चाहिए, जो दिल्ली सरकार के अधिकार क्षेत्र से परे है। दिल्ली विशाल राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का हिस्सा है, जिसमें हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के जिले शामिल हैं। इन राज्यों के अधिकांश शहर भारत में शहरी प्रदूषण का मुख्य स्रोत हैं। दिल्ली की शीतकालीन प्रदूषण नियंत्रण कार्य योजना के प्रभावी होने के लिए, इन क्षेत्रों के प्रशासनों को पारस्परिक योजनाएं लागू करनी होंगी। पुराने वाहनों और निर्माण पर मानक प्रतिबंध पिछली सर्दियों में ज्यादा असरदार साबित नहीं हुए हैं और योजना में तालमेल का कोई प्रमाण नहीं है। केंद्रीय आवास और शहरी मामलों के मंत्रालय के अधीन राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र योजना बोर्ड प्रदूषण नियंत्रण योजनाओं के समन्वय में उपयोगी भूमिका निभा सकता है।

लेकिन इससे भी समस्या का आंशिक समाधान ही होगा। एक्यूआई रैंकिंग के नवीनतम आंकड़ों से पता चलता है कि दिल्ली दुनिया के 20 सबसे प्रदूषित शहरों में शामिल 13 भारतीय शहरों में से एक नहीं है। इनमें बुलंदशहर, पाली, मथुरा, मुजफ्फरनगर, रोहतक, कोटा, हापुड़, बीकानेर, बरेली और हिसार शामिल हैं। अन्य में मुंबई, अगरतला और बुरहानपुर (मध्य प्रदेश) उत्तरी गंगा क्षेत्र से बाहर हैं। इनमें से कई प्रदूषण फैलाने वाले शहर पराली जलाने वाले क्षेत्रों के निकट स्थित हैं। रबी फसल के मौसम से पहले किसान अपने खेतों को साफ करने के लिए आग लगाते हैं, उससे निकलने वाले घने धुएं से कोई भी उत्तरी शहर अछूता नहीं है।

अब तक हरियाणा और पंजाब, जो पराली जलाने की समस्या का केंद्र हैं, वहां की सरकारें इस समस्या का कोई ठोस समाधान नहीं दे पाई हैं। इस समस्या में केंद्र सरकार का हस्तक्षेप जरूरी है, क्योंकि यह दीर्घकालिक केंद्रीय कृषि नीतियों का परिणाम है। इसलिए, निष्कर्ष यह है कि उत्तर भारतीय शहरी प्रशासनों के साथ-साथ ग्रामीण जिलों को शामिल करने वाली समन्वित कार्य योजना के बिना, शहरवार प्रदूषण-कार्य योजनाएं काफी हद तक अप्रभावी साबित होंगी। केंद्र सरकार के लिए अब ठोस कदम उठाना राजनीति का सवाल नहीं, बल्कि बढ़ते जन स्वास्थ्य संकट से निपटने का मामला है।

Date: 24-10-26

देश की श्रेष्ठ एवं बेहतरीन प्रतिभाओं की घर वापसी

श्याम सरन, (लेखक भारत के पूर्व विदेश सचिव हैं)

जब वर्ष 1978 में चीन के नेता तंग श्याओफिंग ने अपने देश की अर्थव्यवस्था में सुधार करने और उसे खोलने या उदार बनाने की शुरुआत की तो उनकी कार्य योजना में देश के शैक्षणिक, वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों को दोबारा पटरी पर लाना पहली प्राथमिकता थी। 10 वर्षों तक चली 'सांस्कृतिक क्रांति' (वर्ष 1966-1976) के दौरान हुई भारी उथल-पुथल ने इन संस्थानों को पूरी तरह बरबाद कर दिया था।

शैक्षिक संस्थानों के बंद होने, पढ़े-लिखे और पेशेवर वर्ग के खिलाफ वैचारिक अभियानों और ग्रामीण जीवन के महिमामंडन के कारण चीन ने अपनी एक पूरी युवा पीढ़ी खो दी थी। तंग श्याओफिंग को महसूस हो गया था कि आधुनिक ज्ञान और कौशल के मामले में चीन को बाकी दुनिया की बराबरी करनी होगी।

चीन के प्रमुख शैक्षणिक संस्थानों, वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुसंधान केंद्रों और पेशेवर क्षमता बढ़ाने वाले संस्थानों को दोबारा शुरू करने के साथ-साथ शियाओपिंग ने अमेरिका और पश्चिमी देशों के साथ अपने अच्छे संबंधों का भी फायदा उठाया। उन्होंने बड़ी संख्या में चीन के युवाओं को इन देशों के शीर्ष विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिए भेजा।

कई वर्षों तक चीन एक स्पंज की तरह काम करता रहा यानी जहां से भी संभव हुआ वहां से ज्ञान, तकनीक और कौशल तहे दिल से स्वीकार करता रहा। विकसित देशों से सीखने की प्रक्रिया में चीन ने विनम्रता और सीखने की इच्छा दिखाई। सबसे अहम बात यह है कि चीन ने एक ऐसा तंत्र तैयार किया जिससे न केवल उन्नत ज्ञान, कौशल और तकनीक अपनाए गए बल्कि उन्हें गहराई से सीखा और आत्मसात भी किया गया। इसी ने आगे चलकर स्वतंत्र रूप से ज्ञान सृजन का रास्ता खोला जिसे आज हम देख पा रहे हैं। पश्चिमी देशों की कंपनियों के साथ शुरू किए गए संयुक्त उद्यम चीन के साझेदारों और कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण का मंच बन गए। बाद में यही लोग स्वयं नए आविष्कारक बने और अपने विदेशी समकक्षों से भी आगे निकल गए।

चीन के एक विकास बैंक के पूर्व चेयरमैन ने बताया कि चीन में आने वाली पूंजी का बड़ा हिस्सा पश्चिमी देशों से नहीं बल्कि 'ग्रेटर चाइना' (ताइवान, हॉन्ग कॉन्ग और सिंगापुर) से आया था। मगर पश्चिमी देशों से निवेश अपने साथ उन्नत तकनीक और आधुनिक प्रबंधन कौशल लेकर आया चाहे वह विदेशी सहायक कंपनियों के जरिये हो या संयुक्त उद्यमों के जरिये। चीन की सरकार ने अपने बाजार में प्रवेश देने के लिए शर्त के तौर पर तकनीक हस्तांतरण पर जोर दिया। इससे चीन की अर्थव्यवस्था बदलने में मदद मिली।

सुधारों की शुरुआत और बाजार खोलने के शुरुआती दौर में चीन को इस बात से कोई परवाह नहीं थी कि विदेश में पढ़ने वाले बहुत से छात्र वहीं रुककर काम करने का विकल्प चुन रहे थे। हालांकि, समय के साथ चीन ने उत्कृष्टता केंद्र बनाए जहां अत्याधुनिक शोध सुविधाएं और आकर्षक वेतन दिए जाते थे। इनमें से कई संस्थानों ने विदेशी वैज्ञानिकों को उन्नत शोध करने के लिए चीन आने का न्योता दिया। यहां तक कि चीन की सरकार के खर्च पर शोध प्रयोगशालाएं भी स्थापित की गईं, बस एक शर्त रखी गई कि उनके साथ चीन के कुछ युवा शोधकर्ता भी काम करेंगे।

एक भारतीय-अमेरिकी वैज्ञानिक (जिनके नाम कई उच्च-तकनीक पेटेंट हैं) चीन के प्रमुख प्रौद्योगिकी और इंजीनियरिंग संस्थान चिंगहुआ विश्वविद्यालय में हर वर्ष कुछ महीने बिताते थे। कई वर्षों के दौरान उन्होंने चीन के लगभग 2,000 वैज्ञानिकों को प्रशिक्षित किया जो आज भी उनके संपर्क में हैं। इन वैज्ञानिकों ने आगे चलकर स्वयं भी कई महत्वपूर्ण और उन्नत शोध किए हैं। हाल ही में अमेरिकी सरकार ने इस तरह की गतिविधियों पर रोक लगाई है।

इसके विपरीत, भारत अपने उन प्रवासियों के विशाल और उत्कृष्ट समूह का लाभ नहीं उठा पाया है जिनके पास कई क्षेत्रों में उन्नत ज्ञान और कौशल मौजूद हैं। अपने निजी अनुभव से मैं जानता हूं कि उनमें से कई लोग बिना किसी बड़े आर्थिक पारितोषिक की उम्मीद किए देशवासियों के साथ अपना ज्ञान साझा करने के लिए उत्सुक हैं। मगर वे शोध के लिए उचित सुविधाएं चाहते हैं। वे चाहते हैं कि जिन संस्थानों में उन्हें काम करने के लिए भेजा जाए वहां उनका स्वागत किया जाए। मगर कई संस्थानों के कर्मचारी ऐसे अत्यधिक योग्य लोगों को देखकर असुरक्षित महसूस करते हैं। उन्हें इस बात का डर सताता रहता है कि कहीं वे उनके सामने कम काबिल न साबित हो जाएं। वे उन्नत ज्ञान और कौशल वाले व्यक्ति की मौजूदगी को सीखने और अपनी क्षमताएं को बेहतर बनाने के एक अवसर के रूप में नहीं देखते। यह चीन के अनुभव से बिल्कुल अलग स्थिति है।

ऐसी सरकारी नीति अपने आप में अजीब है जिसका मकसद अपने पेशेवर और कुशल लोगों को विदेश में भेजना हो। व्यापार वार्ताओं में भारत चाहता है कि उसके शिक्षित और पेशेवर नागरिकों को विदेश में अवसर मिलें। यह इस बात को स्वीकार करने जैसा है कि हम अपने देश में ही उन्हें सार्थक रोजगार दिलाने में लगातार विफल रहे हैं। कड़वा सच यह है कि सही मौका मिलने पर उच्च शिक्षित युवा भारतीय अपना भविष्य विदेश में बनाना पसंद करते हैं। हम अपने युवाओं की शिक्षा पर निवेश तो कर रहे हैं मगर इस निवेश का फायदा कहीं और उठाया जा रहा है। यह कोई अच्छी अर्थ नीति नहीं है। पहले कम से कम इस बात की समझ तो थी कि भारत से प्रतिभाओं का पलायन हो रहा है और यह देश के लिए एक नुकसान है। अब तो इस प्रतिभा पलायन को एक खूबी के रूप में पेश किया जाने लगा है। अपने देश में ही युवा पेशेवरों के लिए अच्छे अवसर पैदा करने वाली नीतियां बनाने के बजाय हम अपने सबसे बेहतरीन और होनहार लोगों को विदेश में अपना भविष्य तलाशने दे रहे हैं। यह एक बड़ी नीतिगत विफलता स्वीकार करने जैसा है।

हाल ही में अमेरिका के कुछ फैसलों को लेकर काफी चिंता है जिनमें अमेरिकी कंपनियों (जिनमें अच्छे वेतन देने वाली तकनीकी कंपनियां भी शामिल हैं) द्वारा भारतीय कर्मचारियों को काम पर रखने पर पाबंदियां लगाई गई हैं। इसे एक झटके के रूप में देखने के बजाय क्यों न भारतीय कंपनी जगत के साथ मिलकर काम किया जाए ताकि हमारे अत्यधिक कुशल देशवासियों का स्वागत किया जा सके और वे अपने ही देश में एक सार्थक करियर बना सकें?

भारत ने अंतरिक्ष एवं परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों और इलेक्ट्रॉनिक, दवा और सूचना-प्रौद्योगिकी (आईटी) जैसे कुछ क्षेत्रों में उत्कृष्टता के केंद्र (आइलैंड्स ऑफ एक्सीलेंस) बनाने में सफलता पाई है। मगर इन केंद्रों का विस्तार होना चाहिए ताकि ये उत्कृष्टता के बड़े क्षेत्र बन सकें। आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) का क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है और इसके लिए सबसे अधिक उच्च प्रशिक्षित लोगों की जरूरत होगी। एआई के अत्याधुनिक शोध और अनुप्रयोगों में काम करने वाले कई लोग भारतीय मूल के हैं। उन्हें वापस भारत लाकर यहां काम पर लगाना, भविष्य के इस बेहद महत्वपूर्ण क्षेत्र में आगे रहने का एकमात्र मौका हो सकता है।

एक ऐसा तंत्र बनाने की सख्त जरूरत है जो ज्ञान और कौशल से संपन्न इन लोगों को स्वदेश में ही बेहतरीन करियर के अवसर दे सके जिससे भारत के बदलाव में मदद मिल सके। विदेश में भारतीय मूल के पेशेवरों के लिए माहौल अब उतना अनुकूल नहीं रहा है। ऐसे में वे स्वदेश में ही अवसरों की तलाश कर सकते हैं। हमें उनके लिए ऐसा माहौल तैयार करना चाहिए कि वे भारत को एक प्रमुख विज्ञान और प्रौद्योगिकी शक्ति के रूप में स्थापित करने में अपना योगदान दें।



Date: 24-10-26

हकीकत के बरक्स

संपादकीय

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र को ऐसी पंचायत के रूप में जाना जाता रहा है, जहां दुनिया भर के विवादों पर चर्चा होती है, अलग-अलग देश अपनी शिकायतों और समस्याओं को साझा करते हैं और वहां से हल का रास्ता निकलने की उम्मीद की जाती है। मगर पिछले कुछ सालों से वैश्विक स्तर पर युद्ध रोकने, खत्म करने या अन्य कई मसलों को सुलझाने के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका जिस स्तर पर कमजोर होती दिखी है, उससे यह सवाल उठा है कि क्या इस संगठन को फिर से अपनी नीतियों और दृष्टिकोण को स्पष्ट करने की जरूरत है।

विडंबना यह है कि कई बार उसकी कुछ रिपोर्ट को तैयार करते हुए विचित्र लापरवाही बरती जाती है, जिसमें दर्ज ब्योरे न केवल सवालों के कठघरे में होते हैं, बल्कि उससे उसकी छवि पर भी विपरीत असर पड़ता है। गौरतलब है कि हाल ही में संयुक्त राष्ट्र की ओर से जारी एक रिपोर्ट 'मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संगठित अपराध और आतंकवाद में अंतर' में कुख्यात दाऊद इब्राहिम की डी कंपनी को 'भारत-स्थित' बताया गया।

जबकि भारत को कठघरे में खड़ी करने वाली इस रिपोर्ट में जो कहा गया, उसका तथ्यों से कोई लेना-देना नहीं है। सच यह है कि दाऊद इब्राहिम को जब 2003 में संयुक्त राष्ट्र ने प्रतिबंध सूची में शामिल किया था, उससे काफी पहले ही वह भारत छोड़ चुका था। आमतौर पर संयुक्त राष्ट्र की ओर से आई बातों के आधार पर वैश्विक स्तर पर राय बनती है। और फिर कई बार उसी के मुताबिक कूटनीतिक समीकरण तय होते हैं। इसलिए भारत ने उचित ही इस रिपोर्ट पर सख्त आपत्ति दर्ज की और इसे तथ्यात्मक रूप से गलत बताते हुए यह चेतावनी भी दी कि इस तरह की लापरवाही से संयुक्त राष्ट्र की छवि और साख को भारी नुकसान पहुंच सकता है। भारत ने पाकिस्तान की ओर संकेत करते हुए यह भी बताया कि दाऊद इब्राहिम का ठिकाना भी वहीं है, जहां अल-कायदा के नेता ओसामा बिन लादेन का पता चला था और उसे मार गिराया गया था। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि अगर आज की तारीख में संयुक्त राष्ट्र में किसी संवेदनशील मसले पर तथ्यों से परे जाकर गलतबयानी की जाती है, तो इससे आखिर नुकसान खुद इस संगठन को ही होता है।

सीमा की चिंता

संपादकीय

भारत-चीन सीमा पर लगातार तनाव चिंता की बात है। जहां, दोनों देशों के बीच व्यापार दिनोंदिन बढ़ रहा है, वहीं सरहद पर रहने वाले भारतीयों की चिंता भी बढ़ती लग रही है। सीमा पर तनाव की पहली स्पष्ट सूचना भारत-तिब्बत सीमा पुलिस (आईटीबीपी) के महानिदेशक शत्रुजीत कपूर की ओर से आई है, तो इसकी गंभीरता को स्वाभाविक ही समझा जा सकता है। खासतौर पर अरुणाचल प्रदेश की सीमा पर कई स्थानों पर चीनी सैनिकों के साथ झड़पें जुलाई महीने से ही जारी हैं। आईटीबीपी के महानिदेशक के मुताबिक, स्थिति तनावपूर्ण होती जा रही है। चीनी सैनिक तकसिंग क्षेत्र में अहम गश्ती चौकियों तक भारतीय सेना को पहुंचने से रोक रहे हैं। सरकार या

सेना की ओर से इसकी आधिकारिक पुष्टि नहीं हुई है, लेकिन महानिदेशक ने आईटीबीपी कर्मियों के वार्षिक अभिनंदन समारोह में इस सूचना को उजागर कर दिया है। इसके बाद जाहिर है, लोग इस मामले में और स्पष्टता की आशा करेंगे। वैसे, यह अंदेशा पहले से ही रहा है कि भारत-चीन सीमा पर सब कुछ अच्छा नहीं चल रहा है, लेकिन अब चिंता और सजगता, दोनों की कुछ ज्यादा ही जरूरत महसूस हो रही है।

ध्यान रहे, साल 1962 में गठित आईटीबीपी ही चीन के साथ लगती भारत की लगभग 3,488 किलोमीटर लंबी वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) की रक्षा करती है। इस विशेष पुलिस बल का गठन चीन के दुस्साहस को रोकने के लिए ही एक विशेष पर्वतीय गुरिल्ला बल के रूप में किया गया था। हालांकि, यह सराहनीय बात है कि यह विशेष पुलिस बल खुद को जरूरत के हिसाब से बदल रहा है। इसने अपनी सभी सीमा इकाइयों में ड्रोन प्लाटून तैनात किए हैं और गलवान जैसी झड़प से बेहतर ढंग से निपटने में सक्षम है। विशेष युद्ध प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने के साथ ही, यह सीमा पर भूमिगत बुनियादी ढांचा बनाने में जुटा है। भारतीय सीमा में अनेक तरह के निर्माण चल रहे हैं और जरूरी सड़कों का जाल बिछाया जा रहा है। ऐसे में, चीन का सक्रिय होना आश्चर्य की बात नहीं है। अभी चीन ने 19 अक्टूबर को ही भारी मशीनरी के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया है। वह 18 नवंबर के बाद भारत और कुछ अन्य देशों को भारी मशीनरी निर्यात नहीं करेगा। इसका सीधा सा मतलब है, अब भारत को टनल बोरिंग मशीन, वॉकिंग एक्सकेवेटर, वेट शॉटक्रीट मशीनें और ड्रेजिंग उपकरण किसी अन्य देश से लेने पड़ेंगे। चीन भले मशीनरी न दे, मगर सीमा पर जारी तैयारियों में कमी नहीं आनी चाहिए। सीमा सुरक्षा के इंतजामों में कोई शिथिलता नहीं बरती जानी चाहिए।

बहरहाल, भारत को कूटनीतिक स्तर पर भी ज्यादा सजग होना पड़ेगा। अफसोस, जब चीनी राष्ट्रपति ब्रिक्स सम्मेलन में भाग लेने के लिए भारत आए थे, तब भी भारतीय सीमा पर चीनी सैनिक दुस्साहस दिखा रहे थे। यह विडंबना है, एक तरफ, सहयोग का इरादा और दूसरी तरफ, तनाव की साजिशें। हमारा विशाल पड़ोसी अपना व्यापार बढ़ाने के साथ तनाव भी मोल लेना चाहता है। यहां भारतीय पक्ष को ज्यादा साफगोई दिखाने की जरूरत है। अनुभव से काम लेना चाहिए। चुप रहने या छिपाने से खतरे नहीं टला करते। सरकार के पास जो सूचनाएं आ रही हैं, उनको लेकर गंभीरता समय की मांग है। यह ऐसा मोर्चा है, जहां विपक्षी दलों को आलोचना का मौका नहीं देना चाहिए और यह राजनीति का विषय नहीं बनना चाहिए। यह सुरक्षा का विषय है और इसमें उदासीनता की कोई गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए।

Date: 24-10-26

बच्चों को भी बराबरी से मिले इंटरनेट सुविधा

रुक्मिणी बनर्जी, (वरिष्ठ शिक्षा सलाहकार)



करीब 25 साल पहले की बात है। दिल्ली के कालकाजी इलाके में एक बस्ती के पास, एक दीवार पर इंटरनेट से कनेक्ट किया हुआ कंप्यूटर लगाया गया था। वहां न कोई शिक्षक था, न मदद या मार्गदर्शन करने वाला और न ही किसी तरह के निर्देश दिए गए थे। आस-पास के बच्चे इस कंप्यूटर को देखने आए। उन्होंने कंप्यूटर के माउस से खेलना शुरू किया। खेलते हुए बच्चों ने आपस में सलाह-मशविरा भी किया होगा। खेलते-खेलते, देखते-देखते और कोशिश करते हुए वे अपने आप सीख

गए कि इंटरनेट पर कैसे और कहां सफर किया जा सकता है।

कंप्यूटर का ऑपरेटिंग सिस्टम अंग्रेजी में था और इंटरनेट पर मौजूद सामग्री भी अंग्रेजी में थी। बच्चों को अंग्रेजी नहीं आती थी, फिर भी उन्होंने अपना रास्ता ढूंढ़ लिया। वैज्ञानिक डॉ. सुगाता मित्रा का यह प्रसिद्ध प्रयोग 'होल इन द वॉल' के नाम से जाना जाता है।

हाल ही में सुप्रीम कोर्ट के उस फैसले की खबर पढ़ी, जिसमें बच्चों के इंटरनेट की पहुंच को बच्चों के मौलिक अधिकारों से जोड़कर देखा गया है। यह खबर पढ़ते ही मुझे अनायास 'होल इन द वॉल' प्रयोग की याद हो आई।

आज जब दुनिया तेजी से बदल रही है, इंटरनेट के असीम संसार को खोजने, समझने और उसका उपयोग करने के लिए हमें अपने बच्चों को कुशलता और सावधानी के साथ तैयार करना चाहिए। इंटरनेट के माध्यम से बच्चों के सीखने, खोजने और अनुसंधान करने के तरीकों का विस्तार हो सकता है। उन्हें किसी विषय को और गहराई से समझने एवं अपनी जिज्ञासाओं के उत्तर तलाशने के अवसर मिल सकते हैं। इसलिए जरूरी है कि घर हो या स्कूल, या कोई दूर-दराज का इलाका- हर बच्चे को इंटरनेट तक पहुंचने का समान, सुलभ और सुरक्षित रास्ता मिले।

पिछले बीस वर्षों से देश के ग्रामीण जिलों में 'असर' सर्वेक्षण किया जा रहा है। इस सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि बच्चे विद्यालय में नामांकित हैं या नहीं और उनमें पढ़ने व गणित के सवाल हल करने की बुनियादी क्षमताएं कितनी विकसित हुई हैं। बच्चों और उनके परिवारों से जुड़ी कुछ अन्य जानकारियां भी इसमें जुटाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, 2018 में किए गए सर्वेक्षण में पाया गया कि ग्रामीण भारत के 90 फीसदी परिवारों के पास साधारण मोबाइल फोन थे, जबकि केवल 36 फीसदी परिवारों के पास स्मार्टफोन। कोविड महामारी के दौरान और उसके बाद इन आंकड़ों में बड़ा बदलाव आया। वर्ष 2022 में 74 प्रतिशत और 2024 में 84 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास स्मार्टफोन पाए गए।

2024 के 'असर' सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि 14 से 16 वर्ष की आयु के 82 प्रतिशत लड़के-लड़कियां न सिर्फ स्मार्टफोन के बारे में जानते थे, बल्कि उसका उपयोग करना भी समझ रहे थे। सर्वेक्षण के दौरान इन बच्चों को स्मार्टफोन पर कई काम करने के लिए दिए गए, जैसे कोई जानकारी खोजना, किसी खास विषय से जुड़ी सामग्री

ढूढ़ना और अपने परिचित किसी व्यक्ति को संदेश भेजना। लगभग 75 प्रतिशत बच्चे ऐसे काम आसानी से कर पाए। गौरतलब है कि इनमें से कई बच्चों के पढ़ने और गणित के बुनियादी कौशल अब भी कमजोर थे।

निस्संदेह, आज के दौर में इंटरनेट पूरी तरह सुरक्षित नहीं है। सुप्रीम कोर्ट का आदेश भी इंटरनेट के इस्तेमाल से जुड़े जोखिमों और बच्चों की सुरक्षा की जरूरत को रेखांकित करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीई-एसई) - दोनों दस्तावेज, शिक्षा में डिजिटल तकनीक के इस्तेमाल के साथ सावधानी, निगरानी और उचित दिशा-निर्देशों की जरूरतों पर जोर देते हैं। इसलिए बच्चों और उनके अभिभावकों, दोनों में जागरूकता बढ़ाना आवश्यक है, ताकि बच्चे इंटरनेट का सुरक्षित, जिम्मेदार एवं उपयोगी तरीके से इस्तेमाल करना सीख सकें।

‘असर’ 2024 के सर्वेक्षण में 14-16 वर्ष के किशोरों से इंटरनेट सुरक्षा से जुड़े कुछ सवाल भी पूछे गए थे। उनसे पूछा गया कि क्या वे प्रोफाइल को रिपोर्ट करना जानते हैं, अपनी प्रोफाइल की निजता समझते हैं और अपना पासवर्ड बदलना जानते हैं? सर्वेक्षण में शामिल लगभग आधे बच्चे इन सबसे अनजान थे।

सुप्रीम कोर्ट के आदेश में यह स्पष्ट किया गया है कि बच्चों को हानिकारक सामग्री से बचाने के लिए जिम्मेदार लोगों को लगातार सुरक्षा के मजबूत उपाय विकसित करने होंगे और उन्हें उनके लिए जवाबदेह भी ठहराना होगा, लेकिन बच्चों की सुरक्षा के नाम पर उन पर इंटरनेट या सोशल मीडिया के इस्तेमाल को लेकर पूर्ण प्रतिबंध लगा देना उचित नहीं होगा। वैसे भी, अतीत के अनुभवों से समझा जा सकता है कि कानूनी प्रतिबंध लगा देने भर से किसी गतिविधि को पूरी तरह रोका नहीं जा सकता।

जाहिर है, हमें डिजिटल उपकरणों और इंटरनेट को बच्चों की शिक्षा और विकास का सुरक्षित, जिम्मेदार और समान अवसर देने वाला माध्यम बनाने के लिए मिलकर प्रयास करना होगा। इसके लिए बच्चों को डिजिटल सुरक्षा के प्रति जागरूक करना, उन्हें सही निर्णय लेने के लिए तैयार करना और अभिभावकों व शिक्षकों को भी आवश्यक जानकारी और कौशल देना बेहद जरूरी है।

इंटरनेट से बच्चे बहुत कुछ सीख सकते हैं। वे अपनी पसंद के विषयों के बारे में और गहराई से जान सकते हैं और अपने आस-पास की दुनिया से आगे बढ़कर पूरी दुनिया को समझ सकते हैं। इंटरनेट उन्हें नए सवालों के नए तरीके के जवाब खोजने, नई चीजें सीखने और अपनी रुचियों को आगे बढ़ाने के बहुत अवसर देता है।

एक तरफ सीखने की असीम संभावनाएं हैं, तो दूसरी तरफ सुरक्षा से जुड़ी चुनौतियां भी। हमें इनके बीच संतुलन बनाते हुए आगे बढ़ना होगा। 25 साल पहले कालकाजी की बस्ती के उत्साही बच्चों ने दिखा दिया था कि सीखने के लिए जिज्ञासा, कोशिश और खोज की भावना कितनी महत्वपूर्ण होती है। हमारा सपना होना चाहिए कि देश के करोड़ों बच्चे भी उसी प्रेरणादायी रास्ते पर चलें, दुनिया को नए नजरिये से देखें, उसे समझें और उससे सीखें।

Date: 24-10-26

अधिकार देने से पहले सुरक्षा की सोचिए

पवन दुग्गल, (साइबर और एआई कानून विशेषज्ञ)

सर्वोच्च न्यायालय के प्रति पूर्ण सम्मान रखते हुए भी, मीडिया रिपोर्टों में बताई गई इस टिप्पणी पर कि बच्चों पर इंटरनेट का पूर्ण प्रतिबंध अनुचित है, गंभीर प्रश्नचिह्न लग जाता है। क्या अधिकार की चर्चा करते समय हम उस बच्चे की वास्तविक सुरक्षा को पीछे छोड़ दें, जो स्क्रीन के दूसरी ओर बैठा है? साइबर कानून और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) कानून में तीन दशक के काम के अनुभव से मेरा मत स्पष्ट हुआ है। इंटरनेट बच्चों के लिए अवसर भी है और जोखिम भी, पर आज जोखिम इतना बड़ा और तेज है कि कानून को अधिक सतर्क और निर्णायक होना पड़ेगा।

सबसे पहले हम बच्चों के सामने उपस्थित खतरे की बात करें। इसमें पहला खतरा वाहियात सामग्री का है। हिंसा, अश्लीलता और नफरत फैलाने वाली सामग्रियों एक क्लिक की दूरी पर होती हैं। बच्चा उसे खोजता नहीं, कई बार एल्गोरिदम स्वयं उसके सामने ऐसी सामग्री को परोस देता है। दूसरा खतरा ऑनलाइन गैमिंग और यौन शोषण का है। इसमें कोई अपराधी इंटरनेट के माध्यम से किसी बच्चे से दोस्ती करता है, उसका भावनात्मक भरोसा जीतता है और फिर उसका यौन शोषण, ब्लैकमेल या वित्तीय धोखाधड़ी करने के लिए उसके मानस पर नियंत्रण कर लेता है। इसका पता माता-पिता को बिल्कुल नहीं चलता है। तीसरा खतरा साइबर बुलिंग का है। इसमें इंटरनेट, मोबाइल फोन या डिजिटल उपकरणों के माध्यम से किसी बच्चे को बार-बार जान-बूझकर परेशान करना, डराना, अपमानित करना या नुकसान पहुंचाना शामिल है। स्कूल की धमकी बच्चे के बिस्तर तक पहुंच जाती है। उसका दुष्प्रभाव बच्चे के आत्मविश्वास और मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा पड़ता है।

चौथा खतरा लत का है। अनंत स्क्रॉल, ऑटोप्ले और नोटिफिकेशन जैसी डिजाइन तकनीकें जान-बूझकर ध्यान को बांधने के लिए बनाई जाती हैं। वयस्क भी इनसे जूझते हैं, तो विकसित हो रहे बच्चे के मस्तिष्क से बराबरी की अपेक्षा कैसे की जाए? पांचवां खतरा डीपफेक और एआई जनित सामग्री का है। बच्चों की तस्वीरों से बनाई गई छेड़छाड़ वाली सामग्री, एआई चैटबॉट के साथ भावनात्मक निर्भरता और भ्रामक सूचनाएं नए जोखिम हैं, जिनके लिए हमारे कानून अभी पूरी तरह तैयार नहीं हैं। छठा खतरा डाटा के शोषण का है। बच्चों की पसंद, लोकेशन और व्यवहार का डाटा इकट्ठा कर उनका विज्ञापन और प्रोफाइलिंग की जाती है। इसमें साइबर ठगी और ऑनलाइन गेमिंग के जरिये होने वाली आर्थिक धोखाधड़ी भी शामिल है।

हमें समझना चाहिए कि शिक्षा और सूचना जरूरी है, लेकिन अधिकार कभी निरपेक्ष नहीं होते। अपराधी संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रदत्त अधिकारों के नाम पर अपने अपराध को सही ठहराने की कोशिश करते हैं, लेकिन यह भूल जाते हैं कि हमारे संविधान में हर अधिकार के साथ व्यक्तिगत प्रतिबंध की अवधारणा जुड़ी है। बच्चों को

वयस्कों की तरह मताधिकार, अनुबंध या शराब खरीदने की छूट नहीं है, क्योंकि राज्य का दायित्व है कि वह उन्हें ऐसे निर्णयों से बचाए, जिनके परिणाम समझने की परिपक्वता उनमें अभी विकसित नहीं हुई है। यही तर्क ऑनलाइन दुनिया पर भी लागू होना चाहिए। बच्चे का जीवन और गरिमा का अधिकार, हर सुविधा तक असीमित पहुंच के अधिकार से ऊपर है।

यही कारण है कि दुनिया के कई लोकतांत्रिक देश बच्चों को सोशल मीडिया पर आने से रोक रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया ने दिसंबर 2025 में 16 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए सोशल मीडिया खाता रखने के खिलाफ कानून बनाया। इसका मूल संदेश है कि सुरक्षा की जिम्मेदारी बच्चों और माता-पिता पर नहीं, प्लेटफॉर्म पर डाली जाए। अन्य कई देशों में भी इसी तरह के कानून बन रहे हैं। इन कदमों के पीछे एक साझा समझ है। स्वैच्छिक नियम और कंपनियों के आश्वासन अपर्याप्त सिद्ध हुए हैं। जब तक कानूनी बाध्यता नहीं होती, सुरक्षा व्यावसायिक हितों के बाद आती है। आयु-सीमा बच्चे को सजा नहीं देती, वह प्लेटफॉर्म को जवाबदेह बनाती है। भारत का 'डिजिटल व्यक्तिगत डाटा संरक्षण अधिनियम-2023' बच्चों द्वारा डाटा उपयोग के लिए सत्यापन योग्य अभिभावकीय सहमति का प्रावधान करता है और बच्चों की ट्रेकिंग तथा उनको लक्ष्य कर बनाए विज्ञापन पर रोक लगाता है, पर इसके क्रियान्वयन की चुनौतियां बड़ी हैं। सत्यापन की व्यावहारिक विधि क्या होगी और निजता की रक्षा करते हुए आयु की पुष्टि कैसे होगी, ये प्रश्न अभी हैं।

इस तरह की चुनौतियों से निपटने के लिए कुछ अग्रिम उपाय किए जाने चाहिए। सबसे पहले, हर आयु वर्ग के लिए अलग-अलग नियम हों। दूसरा, बच्चों के लिए डिफॉल्ट रूप से सुरक्षित सेटिंग अनिवार्य हों और उल्लंघन पर सार्थक दंड लगे। तीसरा, गोपनीयता का सम्मान करते हुए आयु के सत्यापन की तकनीक विकसित की जानी चाहिए, जो बच्चे की पहचान उजागर किए बिना केवल आयु की पुष्टि करे। चौथा, मनोवैज्ञानिक रूप से हानिकारक डिजाइन पर रोक लगे। बच्चों के लिए अनंत स्क्रॉल, ऑटोप्ले प्रतिबंधित हों। पांचवां, एआई के लिए विशेष नियम बनें। छठा, स्कूलों के पाठ्यक्रम में साइबर सुरक्षा और ऑनलाइन व्यवहार की शिक्षा शामिल हो और माता-पिता को भी प्रशिक्षित किया जाए। सातवां, बच्चों के विरुद्ध ऑनलाइन अपराध पर सामग्री हटाने की समयबद्ध प्रक्रिया और पीड़ित के लिए सहायता तंत्र हो और आठवां, अंतरराष्ट्रीय सहयोग किया जाए।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि प्रश्न यह नहीं है कि बच्चे डिजिटल दुनिया से कटें या जुड़ें। प्रश्न यह है कि वे किस उम्र में, किन शर्तों पर और किसकी जवाबदेही के साथ जुड़ें। जब तक तकनीकी कंपनियां बच्चों के लिए सुरक्षित डिजाइन की जिम्मेदारी नहीं निभातीं, तब तक आयु-आधारित प्रतिबंध एक आवश्यक सुरक्षा कवच है। बच्चों का हित सर्वोपरि है और कानून को इस सत्य के साथ खड़ा होना चाहिए।